प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम, 1887

(1887 का अधिनियम संख्यांक 9)[1]

[24 फरवरी, 1887]

प्रेसिडेंसी नगरों के बाहर स्थापित लघुवाद न्यायालयों के बारे में विधि को समेकित और संशोधित करने के लिए अधिनियम

यत: बंगाल में फोर्ट विलियम और मद्रास और मुंबई के उच्च न्यायालयों की मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की तत्समय की स्थानीय सीमाओं के बाहर स्थापित लघुवाद न्यायालयों के बारे में विधि को समेकित और संशोधित करना समीचीन है;

अत: एतद्द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :—

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. नाम, विस्तार और प्रारम्भ—(1) यह अधिनियम प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम, 1887 कहा जा सकता है ।

(2) इसका विस्तार [2][उन राज्यक्षेत्रों] के सिवाय संपूर्ण भारत पर है, [2][जो 1 नवम्बर, 1956 से ठीक पहले भाग ख राज्यों में समाविष्ट थे], और

(3) यह सन् 1887 की जुलाई के प्रथम दिन को प्रवृत्त होगा ।

2. [**निरसित ।**]—भागत: संशोधन अधिनियम, 1891 (1891 का 12) की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा और भागत: निरसन अधिनियम, 1938 (1938 का 1) की धारा 2 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

3. व्यावृत्तियां—इस अधिनियम की किसी बात का इस प्रकार अर्थान्वयन नहीं किया जाएगा कि वह निम्नलिखित को प्रभावित करे :—

(क) इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व संस्थित किसी वाद में डिक्री के पूर्व या पश्चात् की कोई कार्यवाही; या

(ख) ऋणों या सिविल प्रकृति के अन्य दावों के सम्बन्ध में तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी मजिस्ट्रेट की अधिकारिता, या मद्रास संहिता के उपबन्धों के अधीन ग्राम पंचायत या ग्राम मुन्सिफ की अधिकारिता, या दक्खन कृषक राहत अधिनियम, 1879 (1879 का 17) के अधीन ग्राम मुन्सिफ की अधिकारिता; या

(ग) [3]सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14) से भिन्न कोई स्थानीय विधि या विशेष विधि ।

4. परिभाषा—इस अधिनियम में, जब तक कि कोई बात विषय या संदर्भ में विरुद्ध न हो, "लघुवाद न्यायालय" से इस अधिनियम के अधीन गठित लघुवाद न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत ऐसे न्यायालय में इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने वाला व्यक्ति भी है ।

---

[1] इस अधिनियम के अधीन बंगाल, आगरा प्रान्त और असम में अधीनस्थ न्यायाधीश या मुन्सिफ को प्रदत्त शक्ति और किसी लघुवाद न्यायालय की अधिकारिता के लिए देखिए—बंगाल, आगरा और असम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1887 (1887 का 12) की धारा 25 ।

बंगाल, आगरा और असम सिविल न्यायालय,1887 (1887 का 12) की धाराएं 15, 32, 37, 38, 39 और 40 इस अधिनियम के अधीन गठित लघुवाद न्यायालयों को लागू होती हैं, देखिए 1887 का अधिनियम सं० 12 की धारा 40 ।

1936 के विनियम सं० 4 और 5 की धारा 13 द्वारा लघुवाद न्यायालय की शक्तियां इस अधिनियम के अधीन क्रमश: खोण्डमल और अंगुल जिलों में उपखण्ड अधिकारियों के न्यायालय को प्रदत्त की गई ।

यह अधिनियम, बेलारी जिले में इसके लागू होने के संबंध में 1955 के मैसूर अधिनियम संख्यांक 14 द्वारा और अहमदाबाद नगर में इसके लागू होने के संबंध में 1961 के गुजरात अधिनियम संख्याक 19 द्वारा, निरसित किया गया ।

यह अधिनियम, 1963 के विनियम सं० 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1-7-1965 से) दादरा और नागर हेवली पर, 1965 के विनियम सं० 8 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा (1-10-1967 से) लक्षद्वीप संघ राज्यक्षेत्र पर और 1968 के अधिनियम सं० 26 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा पांडिचेरी के संघ राज्यक्षेत्र पर विस्तारित और प्रवृत्त किया गया ।

यह अधिनियम इसके लागू होने के संबंध में,—

उत्तर प्रदेश में, 1957 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्यांक 17 और 1970 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्यांक 14 द्वारा, मध्य प्रदेश में 1958 के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्यांक 19 द्वारा मुम्बई में, 1958 के मुम्बई अधिनियम संख्यांक 87 द्वारा, पश्चिम बंगाल में 1972 के पश्चिम बंगाल अधिनियम संख्यांक 30 द्वारा, पंजाब में 1975 के पंजाब अधिनियम संख्यांक 20 द्वारा, हरियाणा में 1971 के हरियाणा अधिनियम संख्यांक 27 द्वारा और हिमाचल प्रदेश में 1970 के हिमाचल प्रदेश अधिनियम संख्यांक 4 द्वारा संशोधित किया गया था ।

[2] विधि अनुकूलन (सं० 2) आदेश, 1956 द्वारा "भाग ख राज्यों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] अब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) देखिए ।

अध्याय 2

लघुवाद न्यायालयों का गठन

5. लघुवाद न्यायालयों की स्थापना—(1) राज्य सरकार [1]*** लिखित आदेश द्वारा, किसी प्रेसिडेंसी नगर में स्थापित उच्च न्यायालय की तत्समय की मामूली आरम्भिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के बाहर उसके प्रशासन के अधीन राज्यक्षेत्रों में किसी स्थान पर लघुवाद न्यायालय स्थापित कर सकती है ।

(2) लघुवाद न्यायालय की स्थानीय सीमाओं की अधिकारिता ऐसी होगी जो राज्य सरकार परिनिश्चित करे, और न्यायालय उन सीमाओं के अन्दर ऐसे स्थान या स्थानों पर, जिन्हें राज्य सरकार नियत करे, बैठ सकता है[2] ।

[3][**6. न्यायाधीश**—जब लघुवाद न्यायालय स्थापित किया जा चुका हो तब लिखित आदेश द्वारा न्यायालय का एक न्यायाधीश नियुक्त किया जाएगा :

परन्तु यदि राज्य सरकार इस प्रकार निदेश करे तो वही व्यक्ति एक से अधिक ऐसे न्यायालयों का न्यायाधीश होगा ।]

7. कतिपय परिस्थितियों में बैठने का समय नियत करना—(1) न्यायाधीश, जो ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का न्यायाधीश है, जिला न्यायालय की मंजूरी से उन न्यायालयों में से प्रत्येक में जिनका वह न्यायाधीश है बैठने का समय नियत करेगा ।

(2) समय की सूचना ऐसी रीति में प्रकाशित की जाएगी जो उच्च न्यायालय समय-समय पर निदेशित करे ।

8. अपर न्यायाधीश—[4][(1) यदि राज्य सरकार इस प्रकार निदेशित करे तो, लघुवाद न्यायालयों के या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों के अपर न्यायाधीश, लिखित आदेश द्वारा, नियुक्त किए जा सकते हैं ।]

(2) [5][अपर न्यायाधीश], न्यायालय या न्यायालयों के न्यायाधीश के ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा जो न्यायाधीश उसे समनुदेशित करे, और उन कृत्यों का निर्वहन करते हुए न्यायाधीश की ही शक्तियों का प्रयोग करेगा ।

(3) न्यायाधीश किसी [5][अपर न्यायाधीश] के समक्ष लम्बित कार्य को वापस ले सकता है ।

(4) जब न्यायाधीश अनुपस्थित है तब [6][ज्येष्ठ] अपर न्यायाधीश, न्यायाधीश के सभी या किन्हीं कृत्यों का निर्वहन कर सकता है ।

9. [**न्यायाधीशों का निलंबन और हटाया जाना ।**]—भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा निरसित ।

10. दो न्यायाधीशों से पीठ के रूप में बैठने की अपेक्षा करने की शक्ति—राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात् लिखित रूप में आदेश द्वारा, यह निदेश दे सकती है कि लघुवाद न्यायालयों के दो न्यायाधीश, या लघुवाद न्यायालयों का एक न्यायाधीश और एक अपर न्यायाधीश, वादों के ऐसे वर्ग या वर्गों के, या लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय ऐसे आवेदनों के विचारण के लिए, जिनका आदेश में वर्णन किया जाए, एक साथ बैठेंगे ।

11. पीठ द्वारा सुने गए मामले में विनिश्चय—(1) यदि दो न्यायाधीश या एक न्यायाधीश और एक अपर न्यायाधीश, अन्तिम पूर्वगामी धारा के अधीन एक साथ बैठते हुए किसी विधिक प्रश्न पर या विधि का बल रखने वाली प्रथा पर या किसी ऐसे दस्तावेज का अर्थान्वयन करने में जिसका अर्थान्वयन गुणागुण को प्रभावित कर सकता है, मतभेद रखते हैं तो वे मामले के तथ्यों का एक कथन और वह बात जिस पर उनमें मतभेद है, लेखबद्ध करेंगे और उच्च न्यायालय के विनिश्चय के लिए निदेश करेंगे, और सिविल प्रक्रिया संहिता, (1882 का 14)[7] के अध्याय 46 के उपबन्ध उस निर्देश को लागू होंगे ।

(2) यदि वे उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट मामले से भिन्न किसी मामले में मतभेद रखते हैं तो लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति की तारीख से जो ज्येष्ठ है उस न्यायाधीश की राय, या, यदि उनमें से एक अपर न्यायाधीश है तो उसके साथ बैठने वाले न्यायाधीश की राय, अभिभावी होगी ।

(3) उपधारा (2) के प्रयोजनार्थ, स्थायी रूप से नियुक्त न्यायाधीश स्थानापन्न न्यायाधीश से ज्येष्ठ समझा जाएगा ।

---

[1] 1914 के अधिनियम सं० 4 की धारा 2 और अनुसूची, भाग 1 द्वारा "सपरिषद् गवर्नर जनरल की पूर्व मंजूरी से" शब्द निरसित ।

[2] धारा 5 के खण्ड (2) के अधीन जारी की गई अधिसूचनाओं के लिए, देखिए विभिन्न स्थानीय नियम और आदेश ।

[3] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा मूल धारा के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा मूल उपधारा के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[5] 1915 के अधिनियम सं० 11 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा "अपर" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[6] 1915 के अधिनियम सं० 11 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा अंत:स्थापित ।

[7] अब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 113 और धारा 115 और पहली अनुसूची, आदेश 46 देखिए ।

[1]**12. रजिस्ट्रार**—[2][(1) लघुवाद न्यायालय में न्यायालय का रजिस्ट्रार कहलाने वाला एक अधिकारी नियुक्त किया जा सकता है ।]

(2) जहां, रजिस्ट्रार नियुक्त किया जाता है वहां, वह न्यायालय का मुख्य अनुसचिवीय अधिकारी होगा ।

(3) राज्य सरकार, लिखित आदेश द्वारा, रजिस्ट्रार को, न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर, बीस रुपए से अनधिक रुपए मूल्य के वादों के विचारण के लिए लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश की अधिकारिता प्रदान कर सकती है ।

(4) रजिस्ट्रार अपने द्वारा संज्ञेय ऐसे वादों का विचारण कर सकता है जो न्यायाधीश, साधारण या विशेष आदेश द्वारा निदेश करे ।

[3]* * * * *

13. [**अन्य अनुसचिवीय अधिकारी ।**]—भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा निरसित ।

14. अनुसचिवीय अधिकारियों के कर्तव्य—(1) लघुवाद न्यायालय के अनुसचिवीय अधिकारी, इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य अधिनियमिति में, उनमें से किसी पर अधिरोपित किए गए या अधिरोपित किए जा सकने वाले कर्तव्यों के रूप में उल्लिखित कर्तव्यों के अतिरिक्त, अनुसचिवीय प्रकृति का ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे जो न्यायाधीश निदेश करे ।

(2) उच्च न्यायालय इस अधिनियम, और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य अधिनियमिति से सुसंगत, लघुवाद न्यायालय के अनुसचिवीय अधिकारियों पर ऐसी शक्तियां और कर्तव्य जो वह ठीक समझे प्रदत्त और अधिरोपित करते हुए, और वह ढंग जिससे इस प्रकार प्रदत्त और अधिरोपित शक्तियों और कर्तव्यों का प्रयोग और पालन किया जाएगा, विनियमित करते हुए, नियम बना सकता है ।

अध्याय 3

लघुवाद न्यायालयों की अधिकारिता

15. लघुवाद न्यायालयों द्वारा वादों का संज्ञान—(1) द्वितीय अनुसूची में लघुवाद न्यायालयों के संज्ञान से अपवादित वादों के रूप में विनिर्दिष्ट वादों का लघुवाद न्यायालय संज्ञान नहीं करेगा ।

(2) उस अनुसूची में विनिर्दिष्ट अपवादों के और तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सिविल प्रकृति के सभी वाद जिनका मूल्य पांच सौ रुपए से अधिक नहीं है लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय होंगे ।

(3) जो ऊपर कहा गया है उसके अधीन रहते हुए, राज्य सरकार, लिखित आदेश द्वारा, यह निदेश दे सकती है कि सिविल प्रकृति के सभी वाद जिनका मूल्य एक हजार रुपए से अधिक नहीं है आदेश में उल्लिखित लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय होंगे ।[4]

16. लघुवाद न्यायालयों की अनन्य अधिकारिता—इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य अधिनियमिति द्वारा अभिव्यक्तत:, जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय, लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय कोई वाद उस लघुवाद न्यायालय की, जिसके द्वारा वाद विचारणीय है, अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर अधिकारिता रखने वाले किसी अन्य न्यायालय द्वारा विचारित नहीं किया जाएगा ।

अध्याय 4

पद्धति और प्रक्रिया

17. सिविल प्रक्रिया संहिता का लागू होगा—(1) [5][सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में विहित प्रक्रिया, उस संहिता या इस अधिनियम द्वारा जहां तक अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय,] लघुवाद न्यायालय में, उसके द्वारा संज्ञेय सभी वादों में और ऐसे वादों से उद्‌भूत होने वाली सभी कार्यवाहियों में, अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया होगी :

परन्तु आवेदक एकपक्षीय पारित की गई डिक्री को अपास्त करने के आदेश के लिए या निर्णय के पुनर्विलोकन के लिए अपना आवेदन प्रस्तुत करने के समय, या तो डिक्री के अधीन अथवा निर्णय के अनुसरण में उससे शोध्य रकम न्यायालय में जमा करेगा, या [6][डिक्री के पालन के लिए या निर्णय के अनुपालन के लिए ऐसी प्रतिभूति देगा जो न्यायालय ने, उसके द्वारा इस निमित्त दिए गए पूर्ववर्ती आवेदन पर, निर्दिष्ट की हो] ।

---

[1] प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय (मुम्बई संशोधन) अधिनियम, 1930 (1930 का मुम्बई अधिनियम सं० 6) की धारा 2 द्वारा इस धारा का संशोधन मुम्बई प्रेसिडेंसी में लागू करने के लिए किया गया ।

[2] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा मूल उपधारा के, जो इस प्रकार है "(1) स्थानीय सरकार लघुवाद न्यायालय में ऐसा अधिकारी नियुक्त कर सकेगी जिसे न्यायालय का रजिस्ट्रार कहा जाएगा" के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाएगा ।

[3] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा उपधारा (5), जो इस प्रकार है "स्थानीय सरकार द्वारा किसी रजिस्ट्रार को पद से निलंबित किया जा सकेगा या हटाया जा सकेगा", निरसित की गई ।

[4] इस धारा के अधीन जारी अधिसूचनाओं के लिए देखिए स्थानीय नियम और आदेश ।

[5] 1926 के अधिनियम सं० 1 की धारा 2 द्वारा मूल शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[6] 1935 के अधिनियम सं० 9 की धारा 2 द्वारा "न्यायालय के समाधानप्रद रूप में, डिक्री के पालन या निर्णय के अनुपालन के लिए प्रतिभूति देगा जैसा न्यायालय निदेश दे" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(2) जहां कोई व्यक्ति उपधारा (1) के परन्तुक के अधीन प्रतिभूति के रूप में दायी हो गया है वहां, वह प्रतिभूति सिविल प्रक्रिया संहिता [1][1908] (1908 का 5) की धारा [2][145] द्वारा उपबन्धित रीति में आपन की जा सकती है ।

18. रजिस्ट्रार द्वारा वादों का विचारण—(1) धारा 12 की उपधारा (3) और (4) के अधीन रजिस्ट्रार द्वारा संज्ञेय वादों का, उसके द्वारा विचारण किया जाएगा, और उनमें पारित डिक्रियां उसके द्वारा सभी प्रकार से उस रीति में निष्पादित की जाएंगी, जैसे न्यायाधीश वादों का विचारण करता है और डिक्रियों का निष्पादन करता है ।

(2) न्यायाधीश अपनी फाइल पर, या यदि कोई अपर न्यायाधीश नियुक्त किया गया है तो अपर न्यायाधीश की फाइल पर, ऐसे वाद या अन्य कार्यवाही को अन्तरित कर सकता है जो रजिस्ट्रार की फाइल पर लम्बित है ।

19. रजिस्ट्रार का वादपत्रों को ग्रहण करना, वापस करना और नामंजूर करना—(1) जब लघुवाद न्यायालय का न्यायाधीश अनुपस्थित है, और अपर न्यायाधीश नियुक्त नहीं किया गया है, या नियुक्त किया गया है, किन्तु अनुपस्थित है, तब रजिस्ट्रार किसी वादपत्र को ग्रहण कर सकता है, या उन्हीं कारणों से जिन पर न्यायाधीश वापस कर सकता है या नामंजूर कर सकता है, किसी वादपत्र को वापस या नामंजूर कर सकता है ।

(2) न्यायाधीश स्वप्रेरणा से या पक्षकार के आवेदन पर किसी वादपत्र को जो रजिस्ट्रार द्वारा ग्रहण किया गया है वापस कर सकता है या नामंजूर कर सकता है, या किसी वादपत्र को जो उसके द्वारा वापस या नामंजूर किया गया है ग्रहण कर सकता है :

परन्तु जहां कोई पक्षकार इस उपधारा के अधीन किसी वादपत्र के वापस करने के लिए या नामंजूर करने के लिए या ग्रहण करने के लिए आवेदन करता है, और उसका आवेदन उस दिन के पश्चात् जिस दिन रजिस्ट्रार ने वादपत्र को ग्रहण किया था, या वापस किया था या नामंजूर किया था, न्यायाधीश की प्रथम बैठक पर नहीं किया गया है तो, न्यायाधीश आवेदन को खारिज करेगा जब तक कि आवेदक उसका यह समाधान नहीं कर देता है कि ऐसी बैठक में आवेदन न करने के लिए पर्याप्त कारण थे ।

20. रजिस्ट्रार का संस्वीकृति पर डिक्रियां पारित करना—(1) यदि किसी वाद की सुनवाई के लिए नियत दिन के पूर्व, प्रतिवादी या इस निमित्त उसका सम्यक्त: प्राधिकृत अभिकर्ता रजिस्ट्रार के समक्ष उपसंजात होता है और वादी का दावा स्वीकार करता है तो रजिस्ट्रार, यदि न्यायाधीश अनुपस्थित है, और अपर न्यायाधीश नियुक्त नहीं किया गया है या नियुक्त किया गया है किन्तु अनुपस्थित है, तो प्रतिवादी के विरुद्ध संस्वीकृति पर डिक्री पारित कर सकता है जिसका वही प्रभाव होगा जो न्यायाधीश द्वारा पारित डिक्री का होता है ।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन रजिस्ट्रार द्वारा डिक्री पारित की गई है वहां, न्यायाधीश निर्णय के पुनर्विलोकन के लिए आवेदन मंजूर कर सकता है और उन्हीं शर्तों पर और उन्हीं आधारों पर और उसी रीति में वाद की पुन: सुनवाई कर सकता है मानो डिक्री उसी के द्वारा पारित की गई थी ।

21. रजिस्ट्रार द्वारा डिक्रियों का निष्पादन—(1) यदि न्यायाधीश अनुपस्थित है, और अपर न्यायाधीश नियुक्त नहीं किया गया है या नियुक्त किया गया है किन्तु अनुपस्थित है तो, रजिस्ट्रार, उन अनुदेशों के अधीन रहते हुए जो उसने न्यायाधीश से या, अपर न्यायाधीश द्वारा दी गई डिक्रियों या आदेशों के संबंध में, अपर न्यायाधीश से प्राप्त किए हों, जिस न्यायालय का वह रजिस्ट्रार है उसके द्वारा दी गई या उस न्यायालय को निष्पादन के लिए भेजी गई, डिक्रियों और आदेशों के निष्पादन के लिए आदेशों के संबंध में कोई भी ऐसा आदेश दे सकता है जो इस अधिनियम के अधीन न्यायाधीश दे सकता था ।

(2) न्यायाधीश, किसी डिक्री या आदेश के मामले में जिसके निष्पादन के संबंध में रजिस्ट्रार ने उपधारा (1) के अधीन आदेश दिया है, या अपर न्यायाधीश, ऐसी डिक्री या आदेश के मामले में जो उसने स्वयं दिए हैं और जिसके संबंध में इस उपधारा के अधीन न्यायाधीश ने कार्यवाहियां नहीं की हैं, स्वप्रेरणा से, या रजिस्ट्रार के आदेश की या उस आदेश के अनुसरण में जारी की गई किसी आदेशिका के निष्पादन की तारीख से 15 दिन के अन्दर किसी पक्षकार द्वारा किए गए किसी आवेदन पर, ऐसे आदेश को उलट सकता है या उपान्तरित कर सकता है ।

(3) उपधारा (2) में उल्लिखित 15 दिन की कालावधि [3]इंडियन लिमिटेशन ऐक्ट, 1877 (1877 का 15) के उपबन्धों के अनुसार संगणित की जाएगी मानो पक्षकार का आवेदन निर्णय के पुनर्विलोकन का आवेदन है ।

22. मुख्य अनुसचिवीय अधिकारी द्वारा मामलों का स्थगन—जब लघुवाद न्यायालय का न्यायाधीश अनुपस्थित है और अपर न्यायाधीश नियुक्त नहीं किया गया है, या नियुक्त किया गया है, किन्तु वह भी अनुपस्थित है जब, रजिस्ट्रार या न्यायालय का अन्य मुख्य अनुसचिवीय अधिकारी समय-समय पर न्यायालय की किसी वाद या अन्य विधिक कार्यवाही की सुनवाई स्थगित करने की शक्ति का प्रयोग कर सकता है, और उसकी आगे सुनवाई के लिए दिन नियत कर सकता है ।

23. हक के प्रश्नों को अन्तर्वलित करने वाले वादों में वादपत्र का वापस किया जाना—(1) इस अधिनियम के पूर्वगामी भाग में किसी बात के होते हुए भी, जब वादी के अधिकार और लघुवाद न्यायालय में उसके द्वारा दावा किया गया अनुतोष स्थावर सम्पत्ति के हक या किसी अन्य हक के, जो ऐसा न्यायालय अन्तिमत: अवधारित नहीं कर सकता है, साबित या नासाबित किए जाने पर आधारित है

---

[1] 1926 के अधिनियम सं० 1 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 1926 के अधिनियम सं० 1 की धारा 2 द्वारा "253" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] अब भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) देखिए ।

तब, न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी अनुक्रम पर वादपत्र को हक का अवधारण करने की अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को प्रस्तुत करने के लिए वापस कर सकता है ।

(2) जब न्यायालय किसी वादपत्र को उपधारा (1) के अधीन वापस करता है तो वह [1]सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14) की धारा 57 के दूसरे पैरा के उपबन्धों का अनुपालन करेगा और खर्चे के बारे में ऐसा आदेश देगा जो वह न्यायोचित समझे, और न्यायालय [2]इंडियन लिमिटेशन ऐक्ट, 1877 (1877 का 15) के प्रयोजनों के लिए, अधिकारिता की त्रुटि की प्रकृति के हेतु के कारण वाद को ग्रहण करने में असमर्थ समझा जाएगा ।

24. लघुवाद न्यायालयों के कतिपय आदेशों से अपील—जहां [3][सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 104 की उपधारा (1) के खण्ड (चच) या खंड (ज)] में विनिर्दिष्ट आदेश लघुवाद न्यायालय द्वारा दिया गया है वहां, उससे अपील [4][किसी ऐसे आधार पर जिस पर ऐसे आदेश से उस धारा के अधीन अपील हो सकती है,] जिला न्यायालय को होगी ।

25. लघुवाद न्यायालयों के आदेशों और डिक्रियों का पुनरीक्षण—उच्च न्यायालय, अपना यह समाधान करने के प्रयोजन के लिए कि लघुवाद न्यायालय द्वारा विनिश्चित किसी मामले में दी गई डिक्री या आदेश निधि के अनुसार था, मामले को मंगा सकता है और उसके संबंध में ऐसा आदेश पारित कर सकता है, जो वह ठीक समझे ।

26. [सिविल प्रक्रिया संहिता की दूसरी अनुसूची का संशोधन ।]—प्रेसिडेंसी लघुवाद न्यायालय विधि संशोधन अधिनियम, 1888 (1888 का 10) की धारा 4 द्वारा निरसित ।

27. डिक्रियों और आदेशों की अन्तिमता—इस अधिनियम द्वारा जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय इस अधिनियम के पूर्वगामी उपबन्धों के अधीन लघुवाद न्यायालय द्वारा दी गई डिक्री या आदेश अन्तिम होगा ।

अध्याय 5

अनुपूरक उपबन्ध

28. लघुवाद न्यायालयों का अधीनस्थ होना—(1) लघुवाद न्यायालय जिला न्यायालय के प्रशासनिक नियंत्रण और उच्च न्यायालय के अधीक्षण के अधीन होगा और,—

(क) ऐसे रजिस्टर, बहियां और लेखे रखेगा जो उच्च न्यायालय समय-समय पर विहित करे; और

(ख) अभिलेखों, विवरणियों और कथनों के लिए जिला न्यायालय, उच्च न्यायालय या राज्य सरकार द्वारा की जाने वाली अपेक्षाओं का ऐसे प्ररूप और रीति में, जो आदेश करने वाला प्राधिकारी निदेश करे, अनुपालन करेगा ।

(2) जिला न्यायालय का लघुवाद न्यायालय से, प्रशासनिक नियंत्रण के बारे में वही संबंध होगा जो जिला न्यायालय का राज्य सरकार द्वारा प्रशासित राज्यक्षेत्र के उस भाग में जिसमें लघुवाद न्यायालय स्थापित है, निम्नतम श्रेणी के पांच हजार रुपए मूल्य के आरंभिक वाद को विचारण करने में सक्षम सिविल न्यायालय के साथ है ।

29. मुद्रा—लघुवाद न्यायालय ऐसे प्ररूप और लम्बाई-चौड़ाई की मुद्रा का उपयोग करेगा, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए ।

30. लघुवाद न्यायालयों का उत्सादन—राज्य सरकार, लिखित आदेश द्वारा, लघुवाद न्यायालयों को [5]उत्सादित कर सकती है ।

31. लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश को अन्य पद पर नियुक्त करने की शक्ति की व्यावृत्ति—(1) इस अधिनियम की किसी बात का यह अर्थान्वयन नहीं किया जाएगा कि वह किसी व्यक्ति को जो लघुवाद न्यायालय का न्यायधीश या अपर न्यायाधीश है किसी अन्य [6]सिविल न्यायालय का न्यायाधीश या किसी वर्ग का मजिस्ट्रेट [7][नियुक्त होने से] या किसी अन्य लोक पद को धारण करने से निवारित करती है ।

(2) जब कोई न्यायाधीश या अपर न्यायाधीश इस प्रकार नियुक्त किया जाता है तब, उसके न्यायालय के अनुसचिवीय अधिकारी, ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए जो राज्य सरकार इस निमित्त बनाए, उस अन्य पद के कर्तव्यों के निर्वहन में उसकी सहायता के लिए नियुक्त अनुसचिवीय अधिकारी समझे जाएंगे ।

32. अधिनियम का उन न्यायालयों को लागू होना जिनमें लघुवाद न्यायालय की अधिकारिता विनिहित की गई है—(1) अध्याय 3 और 4 का उतना भाग जो—

---

[1] अब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की अनुसूची 1, आदेश 7, नियम 10 देखिए ।

[2] अब भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) देखिए ।

[3] 1922 के अधिनियम सं० 9 की धारा 5 द्वारा "सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 588 का खण्ड (29)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1922 के अधिनियम सं० 9 की धारा 5 द्वारा अंत:स्थापित ।

[5] उदाहरणार्थ लघुवाद न्यायालय (भड़ौच) को उत्सादित करने की अधिसूचना मुंबई सरकार राजपत्र 1907, भाग 1, पृष्ठ 339 देखिए ।

[6] उदाहरणार्थ इस शक्ति के अधीन जारी अधिसूचनाएं—संयुक्त प्रांत नियम और आदेश देखिए ।

[7] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा "नियुक्ति करने से स्थानीय सरकार को" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(क) लघुवाद न्यायालयों द्वारा संज्ञेय वादों की प्रकृति;

(ख) उन वादों में अन्य न्यायालयों की अधिकारिता का अपवर्जन;

(ग) लघुवाद न्यायालयों की पद्धति और प्रक्रिया;

(घ) उन न्यायालयों के कतिपय आदेशों से अपील और उनके द्वारा विनिश्चित मामले का पुनरीक्षण, और

(ङ) इस अधिनियम द्वारा यथा उपबन्धित अपील और पुनरीक्षण के अधीन रहते हुए उनकी डिक्रियों और आदेशों की अन्तिमता,

से संबंधित है, तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति द्वारा या उसके अधीन लघुवाद न्यायालय की अधिकारिता से विनिहित न्यायालयों को उन न्यायालयों द्वारा उस अधिकारिता के प्रयोग के बारे में लागू होता है ।

(2) लघुवाद न्यायालयों की अधिकारिता जिनमें विनिहित है उन न्यायालयों के संबंध में उपधारा (1) की कोई बात उन न्यायालयों में उस तारीख के पूर्व जिसको वह अधिकारिता उसमें विनिहित की गई थी संस्थित वादों या प्रारंभ की गई कार्यवाहियों को लागू नहीं होती है ।

33. इस अधिनियम और संहिता का इस प्रकार विनिहित न्यायालय को दो न्यायालयों के रूप में लागू होना—लघुवाद न्यायालय की अधिकारिता जिसमें निहित की गई है वह न्यायालय, उस अधिकारिता के प्रयोग के संबंध में, और वही न्यायालय, सिविल प्रकृति के वादों की जो लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय नहीं है, अधिकारिता के प्रयोग के संबंध में, इस अधिनियम और सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14)[1] के प्रयोजनार्थ भिन्न न्यायालय समझे जाएंगे ।

34. इस प्रकार लागू की गई संहिता का उपान्तरण—अन्तिम दो पूर्वगामी धाराओं में किसी बात के होते हुए भी,—

(क) जब, लघुवाद न्यायालय की अधिकारिता के प्रयोग में, वह अधिकारिता जिसमें विनिहित की गई है वह न्यायालय, स्वयं को, सिविल प्रकृति के वादों की, जो लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय नहीं है अधिकारिता रखने वाले न्यायालय के रूप में निष्पादन के लिए डिक्री भेजता है; या

(ख) जब कोई न्यायालय, उसकी सिविल प्रकृति के वादों की, जो लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय नहीं है, अधिकारिता के प्रयोग में स्वयं को लघुवाद न्यायालय की अधिकारिता जिसमें विनिहित की गई है उस न्यायालय के रूप में निष्पादन के लिए डिक्री भेजता है,

तब सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14) की धारा 224[2] में उल्लिखित दस्तावेज डिक्री के साथ नहीं भेजे जाएंगे जब तक कि किसी मामले में, न्यायालय सिविल लिखित आदेश द्वारा उन्हें भेजने की अपेक्षा न करे ।

35. उत्सादित न्यायालयों की कार्यवाहियों का चालू रहना—(1) जहां लघुवाद न्यायालय, या लघुवाद न्यायालय की अधिकारिता जिसमें विनिहित की गई है उस न्यायालय की, किसी मामले के संबंध में किसी कारणवश अधिकारिता समाप्त हो गई है, वहां उस मामले के संबंध में कोई कार्यवाही, चाहे डिक्री के पूर्व हो या पश्चात्, जो, यदि न्यायालय की अधिकारिता समाप्त न हो जाती तो उसमें होती, उस न्यायालय में होगी जिसको यदि वह वाद जिससे कार्यवाही उद्भूत हुई है संस्थित किया जाने वाला होता तो वाद को विचार करने की अधिकारिता होती ।

(2) इस धारा की कोई बात उन मामलों को लागू नहीं होती है जिनके लिए लघुवाद न्यायालयों को यथाविस्तारित सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14)[1] में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य अधिनियमिति में विशेष उपबंध किए गए हैं ।

36. [**भारतीय परिसीमा अधिनियम का संशोधन ।**]—भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1908 (1908 का 9) द्वारा निरसित ।

37. कतिपय आदेशों का प्रकाशन—इस अधिनियम द्वारा राज्य सरकार द्वारा लिखित रूप में किए जाने के लिए अपेक्षित सभी आदेश राजपत्र में प्रकाशित किए जाएंगे ।

प्रथम अनुसूची—[**अधिनियमिति निरसित ।**] संशोधन अधिनियम, 1891 (1891 का 12) की धारा 2 अनुसूची 1 द्वारा निरसित ।

---

[1] अब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) देखिए ।

[2] अब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) आदेश, 21, नियम 6 देखिए ।

[1][द्वितीय अनुसूची

(धारा 15 देखिए)

लघुवाद न्यायालय के संज्ञान से अपवादित वाद

[2][(1) केन्द्रीय सरकार, सम्राट के प्रतिनिधि या राज्य सरकार के आदेश द्वारा किया गया या किए जाने के लिए तात्पर्यित किसी कार्य के संबंध में वाद;]

(2) किसी न्यायालय के या अपने पद के निष्पादन में कार्य करते हुए किसी न्यायिक अधिकारी के निर्णय या आदेश के अनुसरण में किसी व्यक्ति द्वारा किए जाने के लिए तात्पर्यित किसी कार्य के संबंध में वाद;

(3) सरकार के किसी अधिकारी द्वारा अपनी शासकीय हैसियत से या प्रतिपाल्य अधिकरण द्वारा, या प्रतिपाल्य अधिकरण के किसी अधिकारी द्वारा उसके पद के निष्पादन में किए जाने या दिए जाने के लिए तात्पर्यित किसी कार्य या आदेश से संबंधित कोई वाद;

(4) स्थावर सम्पत्ति के कब्जे के लिए या ऐसी सम्पत्ति में हित के प्रत्युद्धरण के लिए वाद;

(5) स्थावर सम्पत्ति के विभाजन के लिए वाद;

(6) स्थावर सम्पत्ति के बन्धकदार द्वारा बन्धक के पुरोबन्ध के लिए या सम्पत्ति के विक्रय के लिए, या स्थावर सम्पत्ति के बन्धकदार द्वारा बन्धक के मोचन के लिए वाद;

(7) स्थावर सम्पत्ति के भाटक के निर्धारण, वृद्धि, कमी या प्रभाजन के लिए वाद;

(8) मकान किराए से भिन्न भाटक की वसूली के लिए वाद, जब तक कि लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश में उस राज्य सराकर द्वारा अभिव्यक्तत: उसके संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने का प्राधिकार विनिहित न किया गया हो;

(9) भूमि के भू-राजस्व के निर्धारण के लिए दायी होने से संबंधित वाद;

(10) दुर्व्यय का अवरोध करने के लिए वाद;

(11) स्थावर सम्पत्ति में किसी अन्य अधिकार या हित के अवधारण या प्रवर्तन के लिए वाद;

(12) किसी आनुवंशिक पद के कब्जे के लिए या ऐसे पद में किसी हित के लिए वाद, जिसके अन्तर्गत ऐसे पद के कृत्यों का निर्वहन करने के अनन्य या कालिक आवर्ती अधिकार को सिद्ध करने के लिए वाद भी है;

(13) क्रमश: मालिकाना और हक कहलाने वाले भत्ते या फीस के संदाय का, या उपकर अथवा अन्य शोध्य के लिए वाद जब वे उपकर अथवा शोध्य किसी व्यक्ति को उसके स्थावर सम्पत्ति में या किसी आनुवंशिक पद में या किसी पवित्र स्थान में या अन्य धार्मिक संस्था में हित के कारण संदेय है;

(14) किसी व्यक्ति से जिसकी भूमि अर्जन अधिनियम, 1870 (1870 का 10)[3] के अधीन प्रतिकर संदत्त किया गया है, सम्पूर्ण प्रतिकर या उसका कोई भाग वसूल करने के लिए वाद;

(15) किसी संविदा में विनिर्दिष्ट अनुपालन या विखंडन के लिए वाद;

(16) किसी लिखत के परिशोधन या रद्दकरण के लिए वाद;

(17) व्यादेश अभिप्राप्त करने के लिए वाद;

(18) न्यास से संबंधित वाद, जिसके अन्तर्गत मृत न्यासी की साधारण सम्पदा से न्यासभंग के कारण हुई हानि को पूर्ण करने के लिए वाद, और सहन्यासी द्वारा मृत न्यासी की सम्पदा के विरुद्ध अभिदाय का दावा प्रवर्तन करने के लिए वाद;

(19) घोषणात्मक डिक्री के लिए वाद जो सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14)[4] की धारा 283 या धारा 332 के अधीन संस्थित वाद नहीं है;

(20) [4]सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14) की धारा 283 या धारा 332 के अधीन संस्थित वाद;

(21) किसी न्यायालय या राजस्व प्राधिकारी द्वारा कुर्की या न्यायालय अथवा राजस्व प्राधिकारी अथवा संरक्षक द्वारा किसी विक्रय, बन्धक, पट्टे या अन्य अन्तरण को अपास्त करने के लिए वाद;

(22) उस सम्पत्ति के लिए वाद जो वादी ने स्वयं हस्तान्तरित की थी, जब वह विक्षिप्त था,

---

[1] यह अनुसूची, प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय (मुम्बई संशोधन) अधिनियम, 1930 (1930 का मुम्बई अधिनियम सं० 6) की धारा 2 द्वारा और प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय (मुम्बई संशोधन) अधिनियम, 1932 (1932 के मुम्बई अधिनियम सं० 9) की धारा 2 द्वारा, मुम्बई प्रेसिडेंसी में इसके लागू होने के संबंध में, संशोधित की गई है ।

[2] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा मूल पैरा के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] अब भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का 1) देखिए ।

[4] अब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की अनुसूची 1, आदेश 21, नियम 63 और 100 देखिए ।

(23) किसी न्यायालय या न्यात्रिक हैसियत से कार्य करते हुए किसी व्यक्ति के विनिश्चय, डिक्री या आदेश को परिवर्तित या अपास्त करने के लिए वाद;

(24) किसी अधिनिर्णय में प्रतिवाद करने के लिए वाद;

(25) [1]सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14) यथापरिभाषित किसी विदेशी निर्णय या [2][भारत] में प्राप्त किसी निर्णय पर वाद;

(26) [1]सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14) की धारा 295[3] के अधीन अनुचित रूप से वितरित आस्तियों के प्रतिदाय के लिए बाध्य करने के लिए वाद;

(27) [4]भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 (1865 का 10) की धारा 320 अथवा धारा 321 या [4]प्रोबेट और प्रशासन अधिनियम, 1881 (1881 का 5) की धारा 139 अथवा धारा 140 के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा जिसकी किसी निष्पादक या प्रशासक ने वसीयत-सम्पदा दी है या आस्तियों का वितरण किया है, प्रतिदाय बाध्य करने के लिए वाद;

(28) वसीयत-सम्पदा के लिए या किसी वसीयतकर्ता द्वारा वसीयत की सम्पूर्ण अवशिष्ट या उसके किसी अंश के लिए या निर्वसीयती की सम्पूर्ण सम्पत्ति या उसके किसी अंश के लिए वाद;

(29) (क) भागीदारी के विघटन के लिए या उसके विघटन के पश्चात् भागीदारी के कारबार के परिसमापन के लिए वाद;

(ख) भागीदारी-संव्यवहारों के लेखे के लिए वाद; या

(ग) भागीदारी लेखे के तुलन के लिए वाद जब तक पक्षकारों या उनके अभिकर्ताओं ने आय-व्यय का हिसाब न कर लिया हो;

(30) सम्पत्ति के लेखे के लिए और डिक्री के अधीन उसके सम्यक् प्रशासन के लिए वाद;

(31) लेखे के लिए कोई अन्य वाद, जिसके अन्तर्गत बन्धक की तुष्टि के पश्चात्, बन्धकदार द्वारा प्राप्त अधिशेष संग्रहों को वसूल करने के लिए वाद, और वादी के स्वामित्व की स्थावर सम्पत्ति के लाभ के लिए जो प्रतिवादी द्वारा दोषपूर्णत: प्राप्त किए गए हैं, वादी भी हैं;

(32) साधारण औसत हानि के लिए या उद्धारण के लिए वाद;

(33) पोतों के बीच टक्कर के सम्बन्ध में प्रतिकर के लिए वाद;

(34) बीमे की पालिसी या ऐसी पालिसी के अधीन संदत्त किसी प्रीमियम की वसूली के लिए वाद;

(35) निम्नलिखित के लिए प्रतिकर के लिए वाद :—

(क) अनुयोज्य दोष द्वारा कारित किसी व्यक्ति की मृत्यु से उत्पन्न हानि के लिए;

(ख) दोषपूर्ण गिरफ्तारी, अवरोध या परिरोध के लिए;

(ग) द्वेषपूर्ण अभियोजन के लिए;

(घ) अपमान लेख के लिए;

(ङ) अपमान वचन के लिए;

(च) जारकर्म या विलुब्ध करने के लिए;

(छ) सगाई की संविदा विवाह के वचन के भंग के लिए;

(ज) वादी से की गई संविदा को भंग करने के लिए किसी व्यक्ति को उत्प्रेरित करने के लिए;

(झ) किसी सुखाचार में बाधा या किसी जलसरणी को मोड़ने के लिए;

[5][(झझ) किसी कार्य के लिए जो यदि भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय 4 के उपबन्ध न होते तो उक्त संहिता के अध्याय 17 के अधीन दण्डनीय अपराध होता;]

[6][(ञ) अवैध, अनुचित या अत्यधिक करस्थम् कुर्की या तलाशी के लिए, या किसी करस्थम् तलाशी या विधिक आदेशिका के अवैध या अनुचित निष्पादन में किए गए अतिचार के लिए या उसके द्वारा कारित नुकसान के लिए;]

---

[1] अब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की अनुसूची 1, आदेश 21, नियम 63 और 100 देखिए ।

[2] विधि अनुकूलन (सं० 2) आदेश, 1956 द्वारा " किसी भाग क राज्य या किसी भाग ग राज्य" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] अब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 73 देखिए ।

[4] अब भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) की धारा 360 और धारा 361 देखिए ।

[5] 1914 के अधिनियम सं० 6 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[6] 1914 के अधिनियम सं० 6 की धारा 2 द्वारा मूल मद (ञ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ट) सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का 14)[1] के अध्याय 34 के अधीन अनुचित गिरफ्तारी के लिए, या उक्त संहिता के अध्याय 35 के अधीन दोषपूर्णत: अभिप्राप्त व्यादेश के जारी करने के संबंध में; या

(ठ) इस खण्ड के पूर्वगामी उपखण्डों में अविनिर्दिष्ट किसी मामले में शरीर की क्षति के लिए;

(36) किसी मुस्लिम द्वारा तुरन्त देय (मोअज्ज्ल) या आस्थगित (मोवज्जल) मेहर के लिए वाद;

(37) दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए [2]*** अवयस्क की अभिरक्षा के लिए, या विवाह-विच्छेद के लिए वाद;

(38) भरण-पोषण से सम्बन्धित वाद;

(39) ग्राम समाज के प्रतिनिधि को या उसके वारिस या अन्य हक-उत्तराधिकारी को संदेय भू-राजस्व, ग्राम व्यय या अन्य राशियों के बकाया के लिए वाद;

(40) ग्राम समाज के प्रतिनिधि द्वारा या उसके वारिस या अन्य हक-उत्तराधिकारी द्वारा भू-राजस्व, ग्राम व्यय या अन्य राशियों के संदाय के पश्चात् संदेय लाभों के लिए वाद;

(41) संयुक्त सम्पत्ति में अंशधारी द्वारा किसी सह-अंशधारी से शोध्य धन का उसके द्वारा संदाय किए जाने के सम्बन्ध में, या संयुक्त सम्पत्ति के किसी प्रबंधक, या अविभाजित कुटुम्ब के सदस्य द्वारा सम्पत्ति या कुटुम्ब के लेखे उसके द्वारा किए गए संदाय के सम्बन्ध में वाद;

(42) स्थावर सम्पत्ति के संयुक्त बन्धकदारों में से एक द्वारा बन्धक सम्पत्ति के मोचन के लिए उसके द्वारा संदत्त धन के संबंध में अभिदाय के लिए वाद;

(43) राजस्व प्राधिकारी द्वारा भू-राजस्व के बकाया के लिए किए गए दावे की या भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जा सकने वाली मांग की पूर्ति में अभ्यापत्ति सहित संदत्त धन की वसूली के लिए सरकार के विरुद्ध वाद;

[3][(43क) किसी ऐसे कार्य द्वारा, जो यदि भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) के अध्याय 4 के उपबन्ध न होते तो उक्त संहिता के अध्याय 17 के अधीन दण्डनीय अपराध होता, अभिप्राप्त सम्पत्ति की वसूली के लिए वाद;]

(44) ऐसा वाद जिसका लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञान तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति द्वारा वर्जित है ।]

———

[1] अब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) अनुसूची 1, क्रमश: आदेश 38 और 39 और धारा 95 देखिए ।

[2] 1914 के अधिनियम सं० 10 की धारा 3 और अनुसूची 2 द्वारा "पत्नी के प्रत्युद्धरण के लिए" शब्द निरसित किए गए ।

[3] 1914 के अधिनियम सं० 6 की धारा 3 द्वारा अंत:स्थापित ।